शोध मंथन Vol. XV No.IV Oct.- Dec. 2024 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

लोकसाहित्य का परिचात्मक विश्लेषण

प्राप्तिः 18.10.2024
स्वीकृतः 26.12.2024

शोभा कुमारी
सहायक प्राध्यापिका (अंगिका विभाग)
ति.माँ. भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर
ईमेलः *shashi.ryans@gmail.com*

91

सारांश

अंगिका लोककथा अंग महाजनपद की संस्कृति यानी इसके लोकविश्वास, रीति–रिवाज, सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था पर लिखी गई लोक कहानियाँ हैं, अगर ऐसा कहा जाय, तो तो गलत नहीं होगा। ये कहानियाँ इस जनपद के अतीत के वैभव, इसकी समृद्धि का इतिहास खोलती है, तो इस समाज की उन कमजोरियों पर भी अँगूलियाँ रखती हैं, जो सदियों से छूत की तरह इसे ग्रसे हुई हैं। शिष्ट साहित्य अपनी अत्यधिक शिष्टता के बावजूद अनेक बार दीर्घजीवी नहीं हो पाता, इसके कारण तो कई हो सकते हैं–वह चाहे अपने युग के अनुकूल ऐसा साहित्य सामाजिक स्थितियों के बदलते ही नेपथ्य में चला जाता है। लोकसाहित्य के साथ ऐसी दुर्घटना कभी नहीं घटी। लोकसाहित्य तो लोक का साहित्य है, जिसमें समाज के हर वर्ग का योग रहा है, उसने अपने मन की पंक्तियाँ इसमें जोड़ी हैं और इसे लोक के अनुकूल ही बना के रखा है।

अंगिका के लोककथा साहित्य में यह परिवर्तन भले ही नानी–दादी के हाथों में रहने के कारण कम दिखे, लेकिन इसका लोकनाट्य और लोकोक्ति साहित्य समाज की गतिशील चेतना के साथ गतिशील हुआ है। यहा कारण है कि अंगिका लोकनाट्य का बाहरी ढाँचा तो बहुत कुछ पारम्परिक ही है (पूरी तरह नहीं), लेकिन इसका कथ्य बदला है। अंगिका लोकसाहित्य, जो पुराने प्रमंडल यानी आज के भागलपुर, कोशी, पूर्णिया, मुंगेर और नवगठित झारखण्ड राज्य के संताल परगना की लोकभाषा अंगिका को लोकवाङमय है, इसे विवेचन की दृष्टि से कई भागों में बाँटा जा सकता है, लेकिन यहाँ उस विस्तार में न जाकर इसके लोकगाथा, लोकगीत, लोककथा, लोकनाट्य, लोकोक्ति, पहेली और फैकड़े साहित्य पर ही संक्षिप्त रूप से विचार होगा।

'लोक' और 'साहित्य' को मानवीय जीवन से पृथक करके देखा ही नहीं जा सकता। इसलिए हम कह सकते हैं कि लोकसाहित्य लोक द्वारा रचित लोकहित के लिए पाथेय प्रदान कर संपूर्ण लोकजीवन को चित्रित करता है। यही कारण है कि डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने इस साहित्य को 'लोकायन' की संज्ञा दी है। पाश्चात्य विद्वान जब यह देख रहे हैं कि पश्चिम के लोग शांति की

कामना से इसी लोक–साहित्य, रीति–रिवाज, आचार–विचार में रम जाति है, तो लोकसाहित्य असंस्कृत कैसे हो गया। जो हो, शॉलेंट सोधिया वर्न ने कहा है–''लोकसाहित्य लोक की विद्या के रूप में परिभाषित है। 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज' में इसे असंस्कृत लोगों का ज्ञान कहा गया है।''[1] बैटिकिन ने कहा है कि ''लोकसाहित्य अनेक प्राचीन या दूर की वस्तु नहीं है बल्कि एक जीती–जागती भावना है जो हमारे बीच आज भी प्राणवत है।''[2] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकसाहित्य की बड़ी सटीक परिभाषा दी है। उनके अनुसार ''लोकसाहित्य जनता की सम्पत्ति होने के कारण लोकसंस्कृति का दर्पण है।''[3]

लोकसाहित्य की परिभाषाओं के आधार पर निम्नांकित बाते उभरती है –

1. लोकसाहित्य असभ्य और अशिक्षित लोगों द्वारा उन्हीं के लिए लिखा गया साहित्य है।
2. यह वनवासी जंगली जातियों के जीवन से संबंधित साहित्य है।
3. यह गाँव के लोगों का गँबई साहित्य है।
4. यह साहित्य किसी काल विशेष का न होकर युगों से चला आ रहा साहित्य है जो हमें जनजीवन में मौखिक रूप से उपलब्ध होता है।
5. लोकसाहित्य हमारी सभ्यता के साहित्यिक विकास का इतिहास है।

लोकगाथा शब्द में मूलतः तीन अर्थ संयुक्त है। पहला 'लोक', दूसरा 'लोक की भाषा', तीसरा 'गाथा' अर्थात् 'चरित'। पूरा अर्थ हुआ लोक भाषा में चरित। 'गाथा', 'कथा' और 'गीत' इन तीनों शब्दों के स्वरूप में अन्तर है। लोककथा में लोकभाषा में लोक कहानियाँ कही जाती हैं। यह परंपरा जनजीवन द्वारा भाषा की उपलब्धि काल से ही संचारित है। इसी प्रकार लोकगीत की उत्पत्ति का इतिहास भी लोकभाषा से ही सम्बद्ध है। मानव भावों का प्रगाढ़ संबंध गतितात्मक प्रवत्ति से रहता है। जितनी तन्मयता से अपने भावों को गीतों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। उतनी तन्मयता से गद्य या कथा में नहीं। यही कारण है कि विभोरावस्था में कथावाचक भी गद्यवाक्य को गीत की तरह गाते है। विशेषकर हर्ष, करूणा, वेदना, विधि–विधान, गहृस्थी से संबंधित कार्य–कृषि, जॉता, रोपनी, ढेंकी, कूटना, भक्ति, देष, विवाह, जनेऊ, मुंडन, दही, शव–यात्रा आदि तो लोकगीत मन के छोटे–छोटे भावतरंगों को गीतात्मकता प्रदान करने की मनोवैज्ञानिक प्रवत्ति है।

लोकगाथा की उत्पत्ति :

लोकगाथा की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न पाश्चात्य एवं पौवत्यि विद्वानों द्वारा कई कारण एवं आधार बतलाए गये है। इन विचारों की विवेचना करने के पूर्व मैं अपनी अवधारणा व्यक्त करना उचित समझता हूँ। मानवों का सबसे बड़ा गुण है उसका भावुक होना। भावविहीन मनुष्य हो ही नहीं सकता। मानवों की जब भाषा मिली तो उस भाषा से अपने भावों को व्यक्त करने लगा। चूंकि मानव विकास के आरंभिक काल में गीत–संगीत, काव्य, अलंकार आदि का विकास नहीं हुआ था।

लोकगाथा के संबंध में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दिये गये सिद्धांतों से इसकी उत्पत्ति के सही–सही आधार प्राप्त नहीं हो पाये हैं। इन सिद्धांतों पर कई प्रश्न उठाये गये। ग्रीम महोदय लोक निर्मित वाद के सिद्धांत पर डॉ. बहादुर मिश्र का कथन है कि ''अनेक व्यक्तियों के सम्मिलित प्रयास से किसी साहित्यिक रूप का निर्माण करना संभव नहीं है। क्योंकि इस प्रकार की रचना में तारतम्य

बना रहे यह संभव नहीं है। ऐसा भी संभव है कि किसी गाथा की रचना हो जाने के बाद के लोग पीढ़ी–दर–पीढ़ी कुछ–न–कुछ जोड़ते रहे है। इस दृष्टि से लोकगाथा को सामूहिक रचना मानना आरे मूल रचनाकार उल्लेख न रहने के कारण उसे स्वयंभू रचना मानना संभव प्रतीत होता है। इसलिए ग्रीम सिद्धांत अपने आप में पूर्ण नहीं है क्योंकि यह लोकगाथा की उत्पत्ति के संबंध में पर्याप्त प्रकाश डालने में मैं असमर्थ है।''[4]

अगर भारतीय विद्वानों की भी कई उत्कृष्ट परिभाषाएँ लोकगाथा के संदर्भ में उपलब्ध है। जिसमें श्री राम शर्मा के अनुसार–''लोकगाथा कथात्मक, छन्दोवद्ध गेय और लोककंठ पर आधारित काव्य है।''[5]

लोकगाथा की परंपरा :

लोकगाथा की परंपरा 'लोक' की सृष्टि के साथ ही आरंभ हुई होगी। ऐसा माना जाना उचित होगा। विशेषकर भारतीय उपमहाद्वीप के निवासियों का जीवन सदा संगतिमय ही रहा है। इसके जीवन के बाद जब उसे भाषा जैसी अनमोल सम्पत्ति मिली उसने उस भाषा में अपनी उमड़ती घुमड़ती आन्तरिक भावनाओं को गीतों में व्यक्त करना आरंभ किया। वे जानते नहीं थे कि इसे गीत कहते हैं, परन्तु ध्वनिमय प्रकृति की संतान होने के नाते उनके अभिव्यक्तियाँ भी गीतात्मक होने लगी। प्रकृति के रहस्यमय क्रियाकलाप उसकी भावनाओं को जागृत करते रहे। प्रकृति के अलंकारणों को वे अपना आराध्य मानने लगे। मेघ, सूर्य, चन्द्र, धरती, पेड़–पौधें, वायु, नक्षत्रादि जिसे वे उपकृत थे, उन्हें अपना रक्षक मानने लगे और उनकी प्रशंसा के गीत गाने लगे। मूलतः मेरी दृष्टि में लोकगाथा की परंपरा का आरंभ यही से हुआ होगा।

पुरातनता की दृष्टि से क्रमशः वेद, पुराण, ब्राह्मण ग्रंथ, पौराणिक काव्य, महाकाव्य, बौद्ध, जैन, साहित्य एवं विदेशी यात्रियों के यात्रावृत्तांतों में लोकगाथाएँ अपनी परंपरा संयोजित कर रखी हैं। ब्राह्मण ग्रंथों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गाथाएँ 'ऋक', 'यजु' और 'साम' से भिन्न होती थी। एत्तेरय ब्राह्मण से स्पष्ट होता है कि ऋक और गाथा में पार्थक्य है। ऋक का दैवीय संबंध थी इससे स्पष्ट होता है कि भाषाओं की उत्पत्ति मनुष्यों द्वारा है।

मानव समाज की संरचना के क्रम में किसी मानवोपकारी राजा या जननायक के लोकहितैषी कार्यों की प्रशंसा के जो गीत गाये जाते थे उसे गाथा की संज्ञा दी जाती थी। 'गाथा' साहित्य एक पृथक विद्या के रूप में निरूक्तों में भी चर्चित है। दुर्गाचार्य जी ने निरूक्त में गाथा का स्पष्टीकरण इसी रूप में किया है। शतपथ ब्राह्मण एवं एत्तेरय ब्राह्मण में यज्ञ करने वाले नृपतियों की प्रशस्ति के गीत गाये गये हैं। ये गीत 'गाथा' के अन्तर्गत ही परिगणित किये गये है।

पृथ्वी के प्रत्येक भूभाग में जितने भी जनपद है उनकी प्रारंभिक भाषा में मौखिक रूप से जो रचनाएँ रची जाकर लोककंठ द्वारा ही प्रचरित–प्रसरित हुई उसे उस जनपद का लोकसाहित्य कहा जाएगा। उस लोकसाहित्य में जो गेयात्मक गाथाएँ है उसे लोक–साहित्य का 'लोकगाथा' कहा जाएगा। इस विद्या से कोई जनपद अछूता नहीं है। हम जिसे आदिवासी कहते है उनके उत्सवों में सम्मिलित होकर देखने से स्पष्ट होता है कि 'लोकगीत' और 'लोकगाथा' प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में उनके जीवन को संजीवनी प्रदान करता है। प्रत्येक भूभाग में विभिन्न आदिवासी रहते है। उनकी यह परंपरा आज भी मुखरित है, पल्लवित है और पुष्पित है।

लोकगाथा का कोटीकरण :

लोकगाथा के कोटीकरण का आधार लोकगाथा की कथावस्तु है। लोकगाथा की कथावस्तु है। लोकगाथा की कथावस्तु से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि कथा लम्बी है या मंझोली है या छोटी है। इस दृष्टि से इसके तीन विभाजन किये जा सकते है –

1. दीर्घ कथात्मक लोकगाथाएँ
2. मध्य कथात्मक लोकगाथाएँ
3. लघु कथात्मक लोकगाथाएँ

यह कोटीकरण लोकगाथा के आकार का हुआ। इससे यह स्पष्ट नहीं हो पाता है कि लोकगाथा की कथावस्तु क्या है। कथावस्तु प्रेमपरक है, भक्तिपरक है, तंत्रमंत्रपरक है, त्याग तपस्यापरक है, वीरतापरक है या समाजोत्थानपरक है। इसलिए यह आवश्यक है कि लोकगाथाओं का कोटीकरण गाथा के विजय के अनुसार उसके चरितनायक या चरितानायिका के चरित्र के आधार पर किया जाए। कहीं–कहीं क्षेत्रीयता के आधार पर भी लोकगाथाओं का वर्गीकरण दर्शाया गया है पर यह कोटीकरण उपयुक्त नहीं लगता है।

लोकगाथा पुरातन लोक की गाथा है। इसका सीधा संबंध लोक–जीवन से है। लोकगाथा लोकसाहित्य की एक महत्वपूर्ण विद्या है। लोकसाहित्य में कई विधाएँ हैं–लोकगाथा, लोकगीत आदि इसी के अंग है। जिसका रचयिता अज्ञात है तथा यह संपूर्ण समाज की संपत्ति है।''[5]

निष्कर्ष

हम यह कह सकते हैं कि लोकसाहित्य एक व्यापक प्रभावपरक भाव की व्यंजना करता है। हमारे सभी रीति–रिवाज, आचार–विचार और उसके व्यवहार को स्वरूप प्रदान करता है। यह साहित्य निबंध होता है। व्याकरण की जटिलताओं से मुक्त होता है। इससे मानव एक स्वतंत्र आत्म–संतोष प्राप्त करता है। लोकसाहित्य हमारे संस्कारों को शक्ति प्रदान करने वाला सबल आधार है। निष्कर्ष रूप में यह कहना ही उचित होगा कि अंगिका लोकगाथा का आकाश इतना विस्तृत है कि उसे एक आलेख की परिधि में समेटना संभव ही नहीं। 'अंगिका लोक साहित्य' में रंजन ने वृहत और लघु अंगिका लोगाथाओं की संख्या, 52 तक बताई है, जिनमें 'राजा हरिचन' भी शामिल हैं। यहाँ इसका भी उल्लेख कर देना आवश्यक होगा कि आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने 'लोकगाथा परिचय' में लिखा है कि ''इस गाथा का एक ही संग्रह पूर्णिया जिला के अंगिका क्षेत्र से आया है।'' गाथा छोटी किन्तु वर्णन विशद है; प्रधानता भक्तिरस की है। इसी तरह कालिदास 'लोकगाथा के संबंध में इनका कथन है 'उक्त गाथा का एक ही संग्रह पूर्णिया जिला के अंगिका क्षेत्र से आया है। गाथा पूर्ण लेकिन अव्यवस्थित है। इसमें पुनरुक्तियाँ बहुत अधिक हैं।

संदर्भ

1. डॉ. गायत्री देवी, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेस; उद्धधरण निर्दिष्ट, अंगिका लोकगीत, पृ. सं. 31
2. डॉ. गायत्री देवी, बेटकिन, उद्धधरण निर्दिष्ट, अंगिका लोकगीत, पृ. सं. 31

3. भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन डॉ. कृष्णादेव उपाध्याय, उद्धधरण निर्दिष्ट, अंगिका लोकगीत, डॉ. गायत्री देवी, पृ. सं. 31
4. अंगिका लोकसाहित्य, रंजन, अनुवादकीय, डॉ. बहादुर मिश्र, शब्द सृष्टि शंकरपुर, दिल्ली, पृ. सं. 81
5. श्री राम शर्मा, उपरिवत्, पृ. सं. 5
6. अंगिका लोकसाहित्य, रंजन, अनुवादकीय, ,डॉ. बहादुर मिश्र, शब्द सृष्टि, शंकरपुर दिल्ली।